Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 1 | May 2024 - October 2024 | pp. 30-34

भारतीय राजनीति एवं विचारकों का भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन पर प्रभाव

डॉ. ईश्वर चन्द्र शर्मा

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मगरा पूंजला, जोधपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

विविध रंगों में रंगी भारतीय राजनीति ने दुनिया में अपनी अमित छाप छोड़ी है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय राजनीति ने यहाँ के जनमानस के प्रत्येक पहलुओं को छूने और बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन विविध पहलुओं में से सामाजिक-आर्थिक पहलुओं का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में होने वाले इन सामाजिक-आर्थिक बदलावों के मूल में जहाँ एक और विभिन्न काल खण्डों की परिस्थितियाँ रही हैं तो वहीं दूसरी और राजनीति तथा सरकारों ने भी इन बदलावों हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गई है कि सामाजिक आर्थिक बदलाव का अर्थ क्या है? भारत में सामाजिक आर्थिक बदलावों का स्वरूप तथा आयाम क्या है? और इन बदलावों में भारतीय राजनीति तथा सरकारों की भूमिका क्या रही है? और रह रही है? इस शोध के लिए पर्यवेक्षणात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का उपयोग किया है। जिसके माध्यम से स्वतन्त्रता से पूर्व एवं पश्चात् अब तक हुए विभिन्न सामाजिक-आर्थिक बदलावों का अध्ययन करते हुए उन बदलावों पर भारतीय राजनीति एवं राजनीतिक विचारकों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि भारत में होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन पर राजनीति का प्रभाव प्रभावी रहा है। यहाँ प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही तरह का रहा है।

संकेताक्षर—*सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, भारतीय राजनीति, सकरात्मक बदलाव*

प्रस्तावना

भारत विविधता में एकता वाला विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है यहाँ के लोकतन्त्र एवं राजनीति का प्रभाव यहाँ की संस्कृति पर रहा है। वहीं यहाँ की संस्कृति ने भी यहाँ के लोकतन्त्र को मजबूत बनाया है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृति से परिपूर्ण हमारे देश भारत ने प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न सामाजिक-आर्थिक बदलावों को अंगीकार किया है। देश में होने वाले इन सामाजिक-आर्थिक बदलावों के मूल में जहाँ एक और विभिन्न काल खण्डों की परिस्थितियाँ रही हैं तो वहीं दूसरी और राजनीति तथा सरकारों ने भी इन बदलावों हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाज में व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच के सम्बन्धों, रीतिरिवाजों परम्पराओं, रुढ़ियों, मान्यताओं, विश्वासों, आदि में होने वाला परिवर्तन सामाजिक बदलाव कहलाता है, वहीं व्यक्तियों के जीवन स्तर में होने वाला परिवर्तन आर्थिक परिवर्तन के नाम से जाना जाता है। आर्थिक परिवर्तन में हम प्रति व्यक्ति आय में होने वाले बदलाव, आय के साधनों में होने वाले बदलाव, आर्थिक संसाधनों के स्वरूप में आने वाले बदलाव, अर्थव्यवस्था के क्षेत्र होने वाले नित-नूतन नवाचार को शामिल कर सकते है। वैदिक काल में जहाँ भारत की सामाजिक व्यवस्था कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था युक्त थी और आश्रम व्यवस्थानुरूप व्यक्ति सामाजिक जीवन जी रहा था तथा चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति उसके जीवन का लक्ष्य हुआ करता था, वहीं कालान्तर में विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण तथा समाज की विभाजनकारी

शक्तियों के प्रभाव के परिणाम स्वरूप इस सामाजिक व्यवस्था में नकारात्मक बदलाव आना शुरू हो गया। वर्णव्यवस्था जन्म आधारित जाति व्यवस्था में बदल गयी। अस्पृश्यता व छूआछूत की भावना बलवती होने लगी। समाज में शोषण बढ़ने लगा। महिलाओं की सशक्त भूमिका कमजोर होने लगी। बहुत से समाज सुधार आन्दोलनों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था को पुनः सकारात्मक बदलाव की दिशा में मोड़ने का कार्य शुरू किया गया।

राजा राममोहन राय ने जातीय भेदभावों का विरोध करते हुए दो बातों पर बल दिया था। "प्रथम, जाति का आधार जन्म नहीं वरन कर्म होना चाहिए। द्वितीय, किसी व्यक्ति को जाति के आधार पर श्रेष्ठ अथवा हेय नहीं माना जा सकता है। उसे उसकी उपलाब्धियों, गुणों और मान्यताओं के आधार पर ही श्रेष्ठ माना जा सकता है।"[1] सतीप्रथा उन्मूलन हेतु बनाए गए कानून हेतु भी राजा राममोहन राय का प्रयास महत्वपूर्ण रहा है। श्रीमती फ्रांसिस के मार्टिन ने 'बंगाल हरकारा' नामक समाचार पत्र में लिखा था, "महान हिन्दू दार्शनिक राममोहन राय की विशेष सहायता के बिना शायद, कभी भी अंग्रेजी सरकार के लिए कानूनन सती-प्रथा रद्द करना सम्भव न था।"[2]

स्वामी दयानन्द सरस्वती का भी भारतीय सामाजिक स्वरूप में परिवर्तन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण योगदान है। "दयानन्द वैदिक वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे किन्तु उन्होंने भारत में व्यवहृत जाति-प्रथा से सम्बन्धित अन्याय की कटु आलोचना की। जन्म को जाति की कसौटी मानने के भयंकर दुष्परिणाम हुए थे। इसलिए दयानन्द इस पक्ष में थे कि मनुष्य का वर्ण उसकी मानसिक प्रवृतियों, गुणों तथा कार्य के अनुसार निर्धारित किया जाय। वस्तुतः दयानन्द का यह विचार क्रान्तिकारी था।"[3] महात्मा गांधी ने लिखा है। "स्वामी दयानन्द हमारे लिए विरासत में जो मूल्यवान वस्तुएँ छोड़ गए हैं उनमें अस्पृश्यता के विरूद्ध उनकी स्पष्ट घोषणा निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है।"[4]

विवेकानन्द को प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था में साकार हुए सामाजिक सामंजस्य तथा समन्वय के आदर्श से प्रेरणा मिली थी। इसलिए उनकी हार्दिक इच्छा थी कि जाति-प्रथा को उदात्त बनाया जाय। तत्व की बात यह नहीं है कि समाज पर नीरस एकरूपता की कोई व्यवस्था थोप दी जाय, आवश्यकता इस बात की है कि हर व्यक्ति को सच्चे ब्राह्मण का पद प्राप्त करने में सहायता दी जाय।[5] किन्तु उन्होंने पुरोहित कर्म की कटु शब्दों में निन्दा की, क्योंकि उससे सामाजिक अत्याचार को कायम रखने में सहायता मिलती थी, और जनता की उपेक्षा होती थी।[6] इसलिए यद्यपि विवेकानन्द भारत की सांस्कृतिक महानता के स्पष्टवादी प्रचारक थे, किन्तु साथ ही साथ उन्होंने प्रचलित सामाजिक अनुदारता के विरुद्ध विध्वंसकारी योद्धा की भाँति संघर्ष किया।

विवेकानन्द ने परम्परावादी ब्राह्मणों के पुरातन अधिकारवाद के सिद्धान्त का खण्डन किया।[7] यह सिद्धान्त शूद्रों अर्थात् देश की बहुसंख्यक जनता को वैदिक ज्ञान के लाभ से वंचित करता है। विवेकानन्द ने निर्भीकता से आध्यात्मिक समता के आदर्श का पक्षपोषण किया। उनका कथन था कि सभी मनुष्य समान हैं और सभी को आध्यात्मिक अनुभूति तथा परम ज्ञान का अधिकार है। उनका लोकतान्त्रिक अध्यात्मवाद वास्तव में एक क्रान्तिकारी आदर्श था। विवेकानन्द चाहते थे कि परम सत्य का बिना किसी शर्त के व्यापक प्रचार किया जाय। उन्होंने कहा है—"इस प्रकार तुम जनता को सबसे बड़ा वरदान दोगे, उसके बन्धनों को तोड़ोगे और सम्पूर्ण राष्ट्र का उद्धार करोगे।"[8] विवेकानन्द ने अस्पृश्यता की भर्त्सना की। उन्होंने रसोईघर और पतीली-कढ़ाई के निरर्थक पंथ का मखौल उड़ाया। इसकी अपेक्षा वे चाहते थे कि आत्म-साक्षात्कार, आत्म-निग्रह और लोक संग्रह की धार्मिक भावना जाग्रत की जाय।

सामाजिक परिवर्तनों के विषय में अरस्तू की भाँति विवेकानन्द भी मिताचार में विश्वास करते थे।[9] सामाजिक परिपाटियाँ समाज की आत्म-परिरक्षण की व्यवस्था का परिणाम हुआ करती हैं। किन्तु यदि परिपाटियाँ स्थायी रूप से कायम रहें तो समाज के अधःपतन का भय उपस्थित हो जाता है। लेकिन पुराने सामाजिक नियमों को हटाने का तरीका यह नहीं है कि उन्हें हिंसा द्वारा नष्ट किया जाय। सही ढंग यह है कि जिन कारणों ने उन नियमों और परिपाटियों को जन्म दिया था उनका धीरे-धीरे उन्मूलन किया जाय। इस प्रकार विशिष्ट सामाजिक परिपाटियाँ स्वतः विलुप्त हो जायेंगी। केवल उसकी भर्त्सना और निन्दा करने से अनावश्यक सामाजिक तनाव और शत्रुता उत्पन्न होती है और लाभ कुछ नहीं होता।[10] हिन्दू समाज अपनी जीवन-शक्ति बनाये रखने में इसलिए सफल हुआ था कि उसमें परिपाचन की सामर्थ्य थी। यदाकदा वह आक्रामक हो गया था,[11] किन्तु उसका बुनियादी रवैया यही था कि जिन शक्तियों के साथ सम्पर्क हो उनके सर्वोत्तम तत्वों से

आत्मसात् कर लिया जाय। उसके दीर्घजीवी होने का रहस्य उसकी परिपालन की उदार तथा रचनात्मक क्षमता ही थी। अतः विवेकानन्द ने उग्र क्रान्तिकारी परिवर्तनों की अपेक्षा अवयवी ढंग के और धीमे सुधार का समर्थन किया। उन्होंने सामाजिक जीवन में यूरोप का अनुकरण करने की कटु आलोचना की। उन्होंने लिखा है—हमें अपनी प्रकृति के अनुसार ही विकसित होना चाहिए। विदेशियों ने जो जीवन-प्रणाली हमारे ऊपर थोप दी है उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। ऐसा करना असम्भव भी है। परमात्मा को धन्यवाद है कि यह असम्भव है। हमें तोड़-मरोड़कर अन्य राष्ट्रों की आकृति का नहीं बनाया जा सकता। मैं अन्य जातियों की संस्थाओं की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, किन्तु हमारे लिये अच्छी नहीं हैं। उनकी विधाएँ, उनकी संस्थाएँ तथा परम्पराएँ भिन्न हैं और उन सबके अनुरूप ही उनकी वर्तमान-प्रणाली है। हमारी अपनी परम्पराएँ हैं और हजारों वर्षों के कर्म हमारे साथ हैं। इसलिए स्वभावतः हम अपनी ही प्रकृति का अनुसरण कर सकते हैं, अपनी ही लकीर पर चल सकते हैं, और हम वही करेंगे। हम पाश्चात्य नहीं बन सकते, इसलिए पश्चिम का अनुकरण करना निरर्थक है।

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, ईश्वरचन्द विद्यासागर महात्मा ज्योति बा फूले जैसे महान समान सुधारकों के प्रयासों से समाज में चेतना का संचार हुआ जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक व्यवस्था में पनपी रूढ़ियों एवं कुरीतियों की समाप्ति हेतु सामाजिक राजनीतिक आन्दोलन भी हुए जिनके दबाव में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इन्हें समाप्त करने हेतु कानून भी बनाए जिन्हें स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय आवश्यकतानुसार संशोधित भी किया गया।

महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता को एक अभिशाप माना था। उनके शब्दों में "आजकल हिन्दू धर्म में जो अस्पृश्यता देखने में आती है, वह उसका एक अमिट कलंक है। मैं यह मानने से इनकार करता हूँ कि वह हमारे समाज में स्मराणातीत काल से चली आयी है। मेरा खयाल है कि अस्पृश्यता की यह घृणित भावना हम लोगों में तब आयी होगी जब हम अपने पतन की चरमसीमा पर रहे होंगे। तब से यह बुराई हमारे साथ लग गयी और आज भी लगी हुई है। मैं मानता हूँ कि यह एक भयंकर अभिशाप है, और यह अभिशाप जब तक हमारे साथ रहेगा तब तक मुझे लगता हैं कि इस पावन भूमि में हमें जब जो भी तकलीफ सहना पडे वह हमारे इस अपराध का, जिसे हम आज भी कर रहे है, उचित दण्ड होगी।"[12]

आजादी के आन्दोलन के समय डॉ, भीमराव अम्बेडकर ने भी सामाजिक समानता एवं समाज में व्याप्त भेदभावों को समाप्त करने हेतु प्रयास किए। महाड़ सत्याग्रह इसका उदाहरण है। उन्होंने शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो का संदेश दिया था।'' आजादी के आन्दोलन के दौरान जहाँ एक ओर सामाजिक व्यवस्था में बदलाव के लिए प्रयास किए जा रहे थे, तो वहीं दुसरी ओर आर्थिक व्यवस्था में भी सुधार हेतु संघर्ष किया गया। बिहार के चम्पारण में सत्याग्रह, गुजरात के खेडा में सत्याग्रह, अहमदाबाद में मिल मालिकों के विरूद्ध सत्याग्रह आदि इसी के उदाहरण है। स्वदेशी को अपनाने तथा लघु और कुटिर उद्योग धन्धों पर दिया गया बल भी भारत में आर्थिक परिवर्तन की दिशा में कदम था।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारतीय संविधान निर्माताओं ने मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन को संभव बनाने का प्रयास किया। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा समाज में सकारात्मक बदलाव लाने हेतु विभिन्न प्रावधान किए गए तथा सरकारों ने उन्हें लागू करके तथा नये-नये कानून बनाकर समाज व्यवस्था को मजबूती देने का कार्य किया। बालविवाह, सतीप्रथा, दहेज प्रथा, महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा, नाबालिगों पर होने वाले यौन दुराचार, अस्पृश्यता, बालश्रम, मुस्लिमों में तीन तलाक, आदि के विरूद्ध सख्त कानून बनाए गए तथा पूर्व में प्रचलित कानूनों में सुधार किया गया। लिव इन रिलेशनशिप एवं समलैंगिक विवाह को समाज में मान्यता दी जाने लगी है। साथ ही इसके खतरों का सामना करने के लिए भी सरकार कानून बनाने की दिशा में प्रयत्नशील है। अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह, जो कभी समाज में सामान्यतया स्वीकार्य नहीं थे अब स्वीकार होने लगे है, इसमें सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण है।

भारतीय राजनीति में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्षरत विभिन्न राजनीतिक दलों ने सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के नारों को अपनी सत्ता प्राप्ति की सीढ़ी के रूप में अपनाया और इसके लिए समय-समय पर विभिन्न आन्दोलन भी किए गए। आरक्षण के समर्थन एवं विरोध में आन्दोलन, विभिन्न जातियों द्वारा

पिछड़ी जातियों में शामिल करने की मांग को लेकर आन्दोलन, मन्दिर प्रवेश के मुद्दे पर आन्दोलन, दलितों पर अत्याचार के मुद्दे को लेकर आन्दोलन, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आरक्षण के सन्दर्भ में जारी गाईड लाईन के समर्थन और विरोध में आन्दोलन आदि सामाजिक बदलाव से सम्बन्धित आन्दोलन कहे जा सकते है। जाति के आधार पर विभिन्न राजनीतिक दलों का भी गठन हुआ है। जैसे बी.एस.पी., आदिवासी पार्टी, सामाजिक न्याय मंच आदि जिन्होंने अपने प्रभाव से सामाजिक बदलाव की कोशिश की है।

इसी प्रकार आर्थिक बदलाव के लिए किसानों, मजदूरों एवं कर्मचारियों द्वारा समय-समय पर किए गए आन्दोलन और राजनीतिक दलों द्वारा उन्हें दिया जाने वाला समर्थन महत्वपूर्ण माना जा सकता है। एम.एस.पी. की मांग एवं अन्य कृषि सम्बन्धी समस्याओं को लेकर समय-समय पर आन्दोलन किए जाते रहे है। सरकार ने कृषि सुधार कानून बनाए थे किन्तु इन आन्दोलनों के दबाव में उन्हें वापस लेना पड़ा। न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, काम के घण्टों का निर्धारण, दुर्घटना के समय क्षति पूर्ति देने से सम्बन्धित कानूनों का निर्माण आर्थिक परिवर्तन को प्रकट करता है। जिसके मूल में राजनीति का दखल रहा है। कर्मचारियों के लिए पुरानी पेंशन कई राज्यों में चुनावी मुद्दा बनी और इसे लागू भी किया गया।

परिणाम

- भारतीय राजनीति एवं राजनीतिक विचारकों का भारत में सामाजिक आर्थिक परिवर्तन पर प्रभावशाली प्रभाव रहा है।
- स्वतन्त्रता पूर्व एवं पश्चात् दोनों ही परिस्थितियों में देश में होने वाले सामाजिक आर्थिक परिवर्तन पर यह प्रभाव रहा है।
- यह प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार का रहा है।
- उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के पश्चात् अर्थात् 1990 के बाद से आर्थिक परिवर्तन पर राजनीति का प्रभाव अधिक देखा गया है।
- वर्तमान में राजनीतिक आन्दोलनों के माध्यम से सरकारों पर दबाव बनाकर सामाजिक आर्थिक बदलाव हेतु प्रयत्न किये जा रहे है जो कई बार सफल भी हो रहे है।

निष्कर्ष

आर्थिक क्षेत्र में भारत कभी सोने की चिड़िया हुआ करता था। किन्तु विदेशियों की लूट का शिकार होने के बाद हमारी अर्थ व्यवस्था गड़बड़ाने लगी। लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धे ठप्प होने लगे, किसानों की खेती पर लगान अधिक वसूला जाने लगा, जमींदारी व जागीरदारी प्रथा ने आर्थिक विषमता की खाई को गहरा बना दिया। स्वतन्त्रता के पश्चात आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए सरकारों ने नियोजित विकास की दिशा में कदम उठाए। नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन द्वारा सकारात्मक आर्थिक बदलाव की बयार बहने लगी। जमींदारी व जागीरदारी उन्मूलन कानून बनाए गए। लघु व कुटीर उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन हेतु योजनाएँ व नीतियाँ क्रियान्वित की जाने लगी। राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त किए गए। बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1990 के दशक में उदारीकरण व भूमण्डलीकरण की विश्व व्यवस्था में भारत ने अपने आपको मजबूती के साथ प्रस्तुत किया और आर्थिक नीतियों को लचीला बनाया। एल.पी.जी. लिब्रलाईजेशन, प्राइवेटाईजेशन और ग्लोबलाईजेशन को स्वीकार किया। इसका प्रभाव देश के आम नागरिक की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ा। 2014 के बाद से नोटबन्दी, जनधन खातों का खुलवाना, मुद्रा लोन, डिजीटल करेन्सी की व्यापकता, प्रधानमन्त्री किसान सम्मान निधि जैसी योजनाओं ने देश में आम आदमी की आर्थिक दशा में सकारात्मक बदलाव लाया है। विभिन्न सामाजिक सुरक्षा की योजनाएँ भी सरकारों द्वारा समाज में लाए जाने वाले सामाजिक-आर्थिक बदलाव को प्रकट करती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारत में सामाजिक आर्थिक बदलावों में भारतीय राजनीति एवं सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और आगे भी रहेगी ऐसी अपेक्षा है।

सन्दर्भ सूची

1. गांधी, मोहनदास करम चन्द, अस्पृश्यता का अभिशाप स्पीचेज एण्ड राइटिंग ऑफ महात्मा गांधी, पृ.सं. 387, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, दिस. 2006, पृ.सं. 265
2. जैन, पुखराज, राजा राममोहन राय, भारतीय राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन पाब्लिकेशन, आगरा, पृ.सं. 171
3. फ्रांसिस के, मार्ग्नि, बंगाल हरकारा

4. वर्मा, डॉ. वी.पी., दयानन्द सरस्वती, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ.सं. 107
5. शारदा हरविलास, दयानन्द स्मरणोत्सव खंड, सम्पादक
6. द कम्पलिट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं. 144
7. द लाईफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 353
8. द ऐविलस ऑफ अधिकारवदा, द कम्पलिट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं. 190-192
9. द लाईफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं. 58
10. पाल, बी.सी., द स्प्रिट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पृ.सं. 40
11. द लाईफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं. 752
12. वर्मा, वी.पी., विवेकानन्द : पटना कॉलेज मैंगजीन, सितम्बर 1946, पृ.सं. 7-15